RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2018-20

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 75, अंक : 32 एक प्रति 2 : रुपये
रविवार 21 अक्टूबर, 2018
विक्रमी सम्वत् 2075, सृष्टि सम्वत् 1960853119
दयानन्दाब्द : 194 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

POSTAGE PRE-PAID MAIL BUSINESS CENTRE 18 OCT 2018 JALANDHAR CITY R.M.S.

वर्ष–75, अंक : 32, 18-21 अक्टूबर 2018 तदनुसार 5 कार्तिक, सम्वत् 2075 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

सभी इन्द्रियों का एक उद्देश्य

ले०–स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

ध्रुव ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु।।
–ऋ० ६।९।५

शब्दार्थ–दृशये = दर्शन के लिए **कम्** = सुखकारी **ध्रुवम्** = अविनाशी **ज्योतिः** = ज्योति **निहितम्** = रखी है, डाली गई है। **पतयत्सु+अन्तः** = विनाशियों में, गतिवालों में **मनः** = मन **जविष्ठम्** = सबसे अधिक वेगवान् है। **समनसः** = मन समेत **विश्वे** = सब **देवाः** = इन्द्रियाँ **सकेताः** = ज्ञानपूर्वक **एकम्** = एक **क्रतुम्** = कर्म को, अथवा कर्त्ता को **अभि** = लक्ष्य करके **साधु** = भली प्रकार **वियन्ति** = विशेषतया प्राप्त हो रही हैं।

व्याख्या–दर्शनीय ज्योति शरीर में मानो छिपी है, किन्तु है वह सुखकारी। उपनिषदों तथा वेदों में आत्मा को अनेक स्थानों पर सुख का हेतु और सबसे प्यारा बताया गया है। यथा–**'तदेतत् प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्मात् सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा। स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात् प्रियं रोत्स्यति, इति।'** [बृहदा० १।४।८]–इसलिए वह जो आत्मा है, वह पुत्र से अधिक प्यारा है, धन से अधिक प्यारा है, अन्य सबसे अधिक प्यारा तथा अन्तरतर=अधिक अन्दर या गुप्त है। जो कोई आत्मा से अधिक किसी को प्यारा कहता है, वह प्यारे के लिए रोयेगा।

याज्ञवल्क्य ने ठीक ही कहा है। आत्मा अविनाशी है। आत्मा से अतिरिक्त धन, जन, तन, मन, इन्द्रियगण सभी विनाशी हैं। इनके विनाश होने पर इनका प्रेमी इनके प्रेम में अवश्य रोएगा। संसार के सारे पदार्थ तभी तक प्यारे लगते हैं, जब तक आत्मा का सम्बन्ध है। आत्मा से वियुक्त होने पर वे प्रीति का साधन नहीं रहते, अतः आत्मा को वेद ने 'क' = सुखकारी कहा है। इन्द्रियों में मन सबसे जविष्ठ है, चञ्चल है। मन के वेग का गीता [६।३४] ने अतीव सुन्दर वर्णन किया है–

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्। तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

हे कृष्ण! मन चञ्चल है, उखाड़-पछाड़ करने वाला, बलवान् तथा हठी है। वायु के समान उसका वश करना अतीव कठिन है। मन और इन्द्रियाँ सब जड़ हैं, अचेतन हैं। अचेतन दूसरे के लिए होता है। वेद इस तत्त्व को इन शब्दों में कहता है–**'विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वियन्ति साधु'** = मन और बुद्धि के साथ सारी इन्द्रियाँ एक कर्त्ता अथवा कर्म को लक्ष्य करके भली-भाँति विशेषरूप से प्राप्त होती हैं, अर्थात् इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि सबका एक उद्देश्य है, एक लक्ष्य है। वह है 'क्रतु'= कर्म करने वाला। कर्म करना आत्मा का धर्म है। इसका भाव यह है कि मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ आत्मा के कर्म-साधन हैं, करण हैं। जब इन सबका लक्ष्य एक है, तो ये भिन्न-भिन्न होते हुए भी परस्पर विरोधी नहीं हैं। यदि आत्मा क्रतु=कर्म करने वाला= याज्ञिक बना रहे, तो इन्द्रियाँ भी 'देव' बनी रहती हैं, अर्थात् इन्द्रियों का देवत्व= क्रतु पुरुष के अधीन है।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतामस्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः।
अन्तरिक्षः शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः।।
–यजु० ३५.९

भावार्थ–परम कृपालु परमात्मा, अपने पुत्र जीव मात्र को उत्तम उपदेश करते हैं–हे मेरे प्यारे पुत्रो! आप लोग यदि पापाचरण को छोड़कर, सदा वेदानुकूल, अपना आचरण बनाते हुए मेरी प्रेम भक्ति में लग जावें तो आपके लिए बस दिशा, उपदिशा, सब जल, सब नदियां, समुद्र, अन्तरिक्ष और इनमें रहने वाले सब प्राणी और सब पदार्थ अत्यन्त मंगलकारी हों।

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत।।
–यजु० ३३.८१

भावार्थ–हे सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामिन् प्रभो! हम सब मुमुक्षु जनों को योग्य है कि हम सब की वाणियाँ आपकी महिमा को बढ़ावें। सब विद्वान् पवित्र हृदय, महातेजस्वी, महात्मा लोगों को भी चाहिए कि, आपकी प्रेमपूर्वक उपासना प्रार्थना और स्तुति करने में लग जावें, क्योंकि आपकी भक्ति से ही हम सबका जन्म सफल हो सकता है। आपकी भक्ति के बिना, विद्वान् हो चाहे अज्ञानी, किसी का भी जन्म सफल नहीं हो सकता। इसलिए हम सबको योग्य है कि हम सब लोग, उस दयामय अन्तर्यामी जगदीश्वर की, पवित्र वेद-मन्त्रों से प्रार्थना उपासना और स्तुति किया करें।

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि।।
–यजु० ३७.१९

भावार्थ–हे दयामय जगद्रक्षक परमात्मन्! आप कृपा करें, हमारा हृदय चेतन स्फूर्तिवाला हो, और अन्तः करण ज्ञानयुक्त हो, आत्मविद्या का प्रकाश हो। बिजुली, अग्नि, सूर्य, वायु आदि विद्याओं की प्राप्ति के लिए सदा आपका ही ध्यान धरें। आप सारे संसार के विद्वानों में अहिंसामय यज्ञ का विस्तार कर रहे हैं, अहिंसक प्राणी की कोई हिंसा न करे। सारे संसार में शान्ति का राज्य हो, कोई किसी को दुःख न देवे। मनुष्यमात्र सब एक दूसरे के मित्र बनकर, एक दूसरे के हित करने में प्रवृत्त हों, कोई किसी की हानि न करे।

गौरवशाली माताओं का जीवन परिचय

ले०-पं० खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोबिन्द राय आर्य एण्ड सन्ज १८० महात्मा गान्धी रोड़, (दो तल्ला) कोलकत्ता

अधिकतर माताओं का जीवन परिचय भारत के इतिहास में पूरा स्पष्ट मिलता है, जैसे सीता, सावित्री, मन्दोदरी, तारा, शकुन्तला, द्रौपदी, कुन्ती, गन्धारी, पदमावती, जीजाबाई, लक्ष्मी बाई आदि, परन्तु कुछ माताओं का जीवन परिचय भारत के इतिहासकारों ने औझल रखा यानि प्रकट नहीं किया। उनमें से कुछ का वर्णन नीचे लिख रहे हैं।

१. उर्मिला-उर्मिला, लक्ष्मण की धर्म पत्नी थी। लक्ष्मण के वन जाने के बाद उर्मिला को चौदह वर्षों तक अयोध्या में बिना पति के ही रहना पड़ा। सीता तो चौदह साल अपने पति श्री राम के साथ रही, चाहे उसे जंगल में ही रहना पड़ा हो। बाद में रावण द्वारा हरण किये जाने के बाद भी लंका ने उसको कोई तकलीफ नहीं थी। रावण ने उससे कभी भी जबरदस्ती नहीं की और उसकी सेवा के लिए एक दाई रहती थी जो सीता से बड़ा प्यार करती थी और बड़ी सेवा भी करती थी और उसको सब समाचार देती रहती थी। सीता को लंका में केवल एक वर्ष ही रहना पड़ा। उसमें भी सीता को खाने, पीने, सोने-जागने व रहने की कोई तकलीफ नहीं थी। इधर उर्मिला को चौदह वर्ष बिना पति के रहना पड़ा। घर का सब काम करना पड़ा। पति के होते हुए भी, चौदह वर्षों तक उर्मिला को बिना पति के बहुत कष्ट उठाना पड़ा और अपने मन को कैसे उसने समझा कर रखा, यह तो उर्मिला ही बता सकती है। उर्मिला यदि चाहती तो वह भी लक्ष्मण के साथ वन में जा सकती थी, परन्तु लक्ष्मण ने कहा कि मुझे भाई श्रीराम और माता सीता की सेवा करनी है, यदि आप मेरे साथ रहोगी तो मैं उनकी सेवा नहीं कर सकूँगा। तब उर्मिला ने अकेले ही अयोध्या में रहना स्वीकार किया। यह उर्मिला के आदर्श व महान् चरित्र को दर्शाता है। जिसका किसी साहित्यकार ने मूल्यांकन नहीं किया। केवल सीता के चरित्र को ही आदर्श बताकर विस्तारपूर्वक वर्णन करते रहे। केवल मैथलीशरण गुप्त ने ही उर्मिला के चरित्र पर कुछ प्रकाश डाला है। बाकी सभी कवियों व लेखकों ने उर्मिला के आदर्श जीवन पर परदा ही डाला है।

2. यशोधरा: यशोधरा सिद्धार्थ (महात्मा बुद्ध) की धर्म पत्नी थी। जब महात्मा बुद्ध को रात्री को वैराग्य जगा तो अपनी धर्म पत्नी यशोधरा व अपने पुत्र राहुल को सोते ही छोड़कर चले गये। यशोधरा को पता ही नहीं चला कि उनके पतिदेव उनको कब छोड़ कर चले गये। यशोधरा को अपने पति के वैराग्य स्वभाव का तो पता ही था। वह समझ गई कि वे कोई वैराग्य की बड़ी उपाधी लेने गये है। मुझे उनके काम में कोई बाधा नहीं डालनी चाहिए इसलिए वह बच्चे के साथ अपना साधारण जीवन व्यतीत करने लगी। यह उसका बहुत बड़ा त्याग ही था जिसका भारत के साहित्यकारों ने कोई उल्लेख तक नहीं किया। इस महान् तपस्वीनी पर भी मैथलीशरण गुप्त की नज़र गई। जब महात्मा बुद्ध वैराग्य की सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। उनको ईश्वर की तरफ से ज्ञान हो चुका था तब वे अपने गाँव आये तब पूरा गाँव उनको देखने के लिए उमड़ पड़ा। परन्तु यशोधरा नहीं गई, तब एक सखी ने मैथलीशरण जी के शब्दों में कहा कि तुम्हारे पति देव गाँव में आये हुए हैं और पूरा गाँव उनको देखने के लिए उमड़ पड़ा है। तुम्हें भी जाकर देखना चाहिए। यशोधरा ने अपनी सखी से जो कुछ कहा, वह बड़ी मार्मिक बात है।

सखी वे मुझसे कह कर जाते, तो क्या वे मुझे पथ-बाधा ही पाते। सखी जब वे आये है इतना, तो दो कदम है उनके लिए कितना। सखा वे मुझ से कह कर जाते... यशोधरा का कहने का तात्पर्य यह है कि यदि मेरे पतिदेव मुझ से कह कर जाते तो मैं उनकी किसी हालत में पथ-बाधा नहीं बनती अर्थात् जाने की अनुमति दे देती। उसका कहने का तात्पर्य यह है कि इसमें मेरी कोई गलती नहीं है। उनकी ही गलती है। अब जब वे अपने गाँव आये हैं तो उनको ही मुझ से मिलने के लिए आना चाहिए। यह यशोधरा के अपने पति के प्रति कोई कठोर शब्द नहीं प्रेम भरे शब्दों में उसकी महानता प्रदर्शित, होती है।

3. राम रखी: यह भाई बालमुकुन्द की धर्म पत्नी थी। जब 23 दिसम्बर 1912 में लार्ड हार्डिंग पर चान्दनी चौक में बम्ब फेंका गया तो भाई बालमुकुन्द अपने साथी मास्टर अमीर चन्द, लाला हनुमन्त प्रसाद, श्री बसन्त कुमार विश्वास व मास्टर अवध बिहारी के साथ लाहौर जेल में बन्द थे तब उनकी धर्म पत्नी रामरखी पहली बार अपने पतिदेव को देखने गई तब भाई बालमुकुन्द आधी मिट्टी मिली हुई रोटी खा रहे थे। राम रखी ने पूछा रोटी कैसी है तब भाई बालमुकुन्द ने कहा आधी मिट्टी भी मिली हुए कच्ची रोटी है तब राम रखी ने रोटी का एक टुकड़ा ले लिया और घर पर जा कर वैसी ही रोटी आधी मिट्टी की कच्ची खाने लगी। उसने सोचा जब मेरे पतिदेव ऐसी रोटी खाते हैं तो मुझे अच्छी रोटी खाने का कोई अधिकार नहीं। जब रामरखी दूसरी बार अपने पतिदेव से मिलने गई तो बालमुकुन्द छोटी सी कोठड़ी में जिसमें पैर भी अच्छी तरह नहीं पसार सकते थे। मच्छरों के बीच सोये हुए थे। रामरखी को यह देख कर बड़ा दुःख हुआ और घर पर आते ही एक अलग में छोटी सी कोठड़ी थी उसमें मच्छर बहुत थे, उस कोठड़ी में सोने लगी। जब उसने सुना कि उनके पतिदेव को फाँसी हो गई है। तब उसने भी खाना-पीना छोड़ दिया और कुछ ही दिनों बाद स्वर्ग को सिधार गई। ऐसी थी आदर्श और महान् पति व्रता राम रखी, जिसका अनन्तर कहीं उदाहरण मिलना मुश्किल है।

4. शिव देवी: शिव देवी, स्वामी श्रद्धानन्द की धर्म पत्नी थी। स्वामी के बचपन का नाम मुन्शीराम था। स्वामी जी के पिता का नाम नानक चन्द था और वह एक पुलिस के बड़े अधिकारी थे। इसलिए स्वामी जी का घर एक धनी और सम्पन्न परिवार था। स्वामी जी एक सम्मान परिवार की वजह में तथा कुछ गलत मित्रों के मिलने से स्वामी जी गलत लाईन में चले गये। स्वामी जी रात को दो बजे शराब में धुत होकर घर में आते और आते ही उल्टी करना आरम्भ कर देते। उनकी धर्म पत्नी शिव देवी एक ऐसी सद्गृहिणी थी, वह अपने पति देव को पहले तो मुंह साफ करती और फिर बाद में उनके गन्दे कपड़े उतार कर, साफ-सुथरे कपड़े पहना कर, उनको अच्छी प्रकार भोजन करवा कर, पँखें से हवा दे कर सुला देती थी। एक रात्रि को स्वामी जी ने अपनी धर्म पत्नी से पूछ लिया, कहा हे शिवे! तूने भोजन तो कर लिया होगा। तब शिव देवी ने कहा, हे पतिदेव! मैं आपके भोजन करने से पहले भोजन कैसे कर सकती हूँ। यह सुनकर स्वामी जी का मन पिघल गया और रोते हुए कहा कि हे शिवे! तूने अभी तक रोटी नहीं खाई है, मैं बड़ा पापी हूँ, तू मेरे लिए अभी तक भूखी है।

मैं आज से ही यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि आगे कभी शराब नहीं पीऊँगा और घर पर समय पर आकर भोजन करूँगा। तभी से स्वामी जी ने सही रास्ता पकड़ लिया और महर्षि स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आकर मुन्शीराम से महात्मा मुन्शीराम बने और फिर स्वामी श्रद्धानन्द बन कर आर्य समाज और राष्ट्र की गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार में खोल कर 1920 में कांग्रेस का अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष बन कर उसे सफल बनाकर हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए जामा मस्जिद की मीनार पर वेद का मन्त्र पढ़ कर व्याख्यान देकर अन्त में शुद्धि कार्य करके बहुत अधिक सेवा करके राष्ट्र को उन्नत बनाया। यह सब काम शिव देवी की सेवा के द्वारा हुआ। स्वामी जी ने अपनी जीवन में स्वयं लिखा है कि मेरी उन्नति में पहला स्थान महर्षि दयानन्द का है दूसरा स्थान मेरी धर्म पत्नी शिव देवी का है।

कुछ माताओं का मैने आदर्श जीवन का वर्णन करके सुधि पाठकों का मनोबल बढ़ाया है। कृपा इस शिक्षा ग्रहण करें।

सम्पादकीय

आर्य साहित्य विक्रेता की गिरफ्तारी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर हमला

उदयपुर के नवलखा महल में सत्यार्थ प्रकाश महोत्सव के अवसर पर अमर स्वामी प्रकाशन के प्रकाशक श्री लाजपतराय अग्रवाल को गिरफ्तार करके स्थानीय प्रशासन ने आर्य समाज की मान्यताओं पर हमला किया है और अभिव्यक्ति की आजादी का हनन किया है। एक मुस्लिम पार्षद की शिकायत पर पुलिस द्वारा की गई एकतरफा कार्यवाही से पूरे देश के आर्यों में भयंकर रोष हैं। यह गिरफ्तारी आर्य समाज की मान्यताओं पर करारा प्रहार है। श्री लाजपत अग्रवाल आर्य समाज के स्टाल से वैदिक साहित्य का प्रचार कर रहे थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश के 14वें समुल्लास की अनुभूमिका में स्पष्ट लिखते हैं कि-

यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिए है।

सब मतों के विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होवे, इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का खण्ड़न कर गुणों को ग्रहण करें।

सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें।

और हठियों का हठ दुराग्रह न्यून करें करावें, क्योंकि पक्षपात से क्या-क्या अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं।

यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिए किया गया है न कि इन को बढ़ाने के अर्थ।

एक दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है।

महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित इन्हीं सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए आर्य जगत के अनेक विद्वानों ने इस्लाम के सिद्धान्तों पर समीक्षात्मक लेखन कार्य किया। उदयपुर में आर्य मिशनरी श्री लाजपत अग्रवाल को जिस पुस्तक को बेचने के आरोप में गिरफ्तार किया गया है, उस पुस्तक का नाम रंगीला रसूल है। यह पुस्तक सर्वप्रथम लाहौर से महाशय राजपाल द्वारा प्रकाशित की गई थी। इस पुस्तक को पढ़कर मुसलमान आक्रोशित हो गए थे और महाशय राजपाल की हत्या कर दी थी।

सन् 1923 में मुसलमानों की ओर से दो पुस्तकें 19 वीं सदी का महर्षि और कृष्ण तेरी गीता जलानी पड़ेगी प्रकाशित हुई थी। पहली पुस्तक में आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश के 14वें समुल्लास में कुरान की समीक्षा से खीज कर महर्षि दयानन्द के विरूद्ध आपत्तिजनक एवं घिनौना चित्रण प्रकाशित किया था, जबकि दूसरी पुस्तक में श्रीकृष्ण जी महाराज के पवित्र चरित्र पर कीचड़ उछाला गया था। उस दौर में विधर्मियों की शरारतें चलती ही रहती थी पर धर्म प्रेमी सज्जन उनका प्रतिकार उनके ही तरीके से करते थे। महाशय राजपाल ने स्वामी दयानन्द और श्रीकृष्ण महाराज के अपमान का प्रति उत्तर 1924 में रंगीला रसूल पुस्तक छाप कर दिया जिसमें मुहम्मद साहिब की जीवनी व्यंगयात्मक शैली में प्रस्तुत की गई थी। इस पुस्तक के मूल लेखक पं. चमूपति जी थे परन्तु नाम न छापने की शर्त पर महाशय राजपाल ने अपना बलिदान देकर भी उनका नाम प्रकाशित नहीं किया।

प्रस्तुत प्रकरण के मूल में भी यही पुस्तक है जिसका मुस्लिम समुदाय के लोगों ने विरोध किया, अपनी शिकायत दर्ज कराई और प्रशासन ने साहित्य विक्रे ता श्री लाजपतराय अग्रवाल को गिरफ्तार करके जेल में ड़ाल दिया। जिन विद्वानों ने अन्य मत-मतान्तरों पर समीक्षात्मक शोध कार्य किया है, उनके द्वारा रचित साहित्य के मूल उद्देश्य को न समझ कर कुछ लोग निंदात्मक रूप में इसे लेते हैं। मत-मतान्तरों की मान्यताओं की समीक्षा निष्पक्ष विद्वान् सदा से करते आये हैं। कबीर, नानक, दादू, आदि की परम्परा शताब्दियों से चलती आयी है। इन समाज सुधारकों की अभिव्यक्ति का सभ्य समाज ने सदा स्वागत किया है। उनके सिद्धान्तों को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता दी गई है। आर्य समाज का समीक्षात्मक साहित्य भी इसी अभिव्यक्ति के तहत आता है। जिसकी रक्षा करना सरकार का दायित्व है।

आर्य साहित्य विक्रेता के स्टाल पर मुस्लिम समुदाय के द्वारा जिन बातों का विरोध किया गया है, जिसे विवादित साहित्य कहा गया है, उसके विषय में शास्त्रार्थ के द्वारा या परस्पर विचार-विनिमय से निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता था परन्तु उन्होंने ऐसा करने का साहस नहीं किया क्योंकि उन्हें अपनी जड़ों के खोखलेपन का अहसास है। इसीलिए छदम नीति का सहारा लेते हुए उन्होंने पुलिस में धार्मिक भावनाओं को भड़काने का हवाला देकर शिकायत दर्ज करवा दी और श्री लाजपत अग्रवाल को गिरफ्तार करवा दिया। यह कार्यवाही त्वरित बिना सोचे समझे और एक साजिश के तहत करवाई गई है। एक मुस्लिम पार्षद ने सत्ता का सहारा लेते हुए पुलिस प्रशासन के ऊपर दबाव बनाकर इस कार्य को अंजाम दिया। अपने कर्त्तव्य के निर्वहन के विपरीत शासन द्वारा शिकायत होने पर एकतरफा कार्यवाही की गई जो निन्दा करने योग्य है। लाजपत जी आर्य समाज के साहित्य को बेच रहे थे, कोई अपराध नहीं कर रहे थे फिर भी उन्हें गिरफ्तार किया गया। क्या यह अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन नहीं है? क्या यह आर्य समाज कर धार्मिक आजादी के अधिकार का अतिक्रमण नहीं है? क्या एक वर्ग विशेष को खुश करने के लिए निर्दोष व्यक्ति के मानवाधिकारों का उल्लंघन नहीं है?

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) एवं आर्य विद्या परिषद पंजाब तथा पंजाब की समस्त आर्य समाजें एवं शिक्षण संस्थाएं अमर स्वामी प्रकाशन के साहित्य विक्रेता श्री लाजपतराय अग्रवाल की गिरफ्तारी का विरोध करती है तथा सीकर से भाजपा सांसद स्वामी सुमेधानन्द तथा राजस्थान सरकार की मुख्यमन्त्री श्रीमती वसुंधरा राजे से अनुरोध करती है कि उदयपुर प्रशासन को तुरन्त आदेश जारी करके श्री लाजपत जी को तत्काल प्रभाव से ससम्मान रिहा करें। अन्यथा पूरे देश में आर्य समाज के द्वारा आन्दोलन किया जाएगा। आर्य समाज के सिद्धान्तों, मान्यताओं के ऊपर होने वाले प्रहार को कभी बर्दाशत नहीं किया जाएगा। आर्य समाज ने अपने आरम्भिक काल से अब तक देश के निर्माण में अपना योगदान दिया है, इसलिए आर्य समाज के खिलाफ किसी भी षडयन्त्र को सहन नहीं किया जाएगा।

प्रेम भारद्वाज
सम्पादक एवं सभा महामन्त्री

वेदों में अहिंसा की यथार्थता

ले.-डॉ. सुशील वर्मा, गली मास्टर मूलचन्द, फाजिलका

मनुष्य के जीवन में देवासुर संग्राम निरन्तर चलता रहता है। जब आसुरी प्रवृतियों का प्रभाव बढ़ जाता है, तो क्लेशों का तूफान उमड़ पड़ता है। ये क्लेश काम, क्रोध, लोभ मोह, ईर्ष्या-द्वेष, अंहकार आदि विविध रूपों में उसे व्यथित करते हैं। इनके वशीभूत होकर वह मानव अन्य प्राणियों को कष्ट देने के लिए तत्पर हो जाता है इसी प्रवृति का नाम है "हिंसा"। परन्तु जब दैवी प्रवृतियाँ इन क्लेशों पर सात्विकता, शान्ति, श्रद्धा, प्रेम उत्साह आदि से विजय प्राप्त करने में सफल हो जाती है तो सुखद साम्राज्य स्थापित हो जाता है। इन्हीं देवी वृत्तियों की जननी एवं पोषिका वृत्ति का नाम है "अहिंसा"।

वेद की शिक्षा तो कहती है "सोमस्वरूप परमेश्वर को चाहने वालों तुम किसी की हिंसा मत करो "मा स्त्रेधत: सोमिन: (ऋग् 7/32/9) आगे (ऋग् 7/32/21) कहा है "न स्त्रेधन्तं रयिर्नशत्" अर्थात् हिंसक वृत्ति वाला व्यक्ति मोक्षरूपी अनुपम सम्पदा को कदापि करने के विषय को अतिसूक्ष्मता एवं व्यापकता से प्रस्तुत किया है। परन्तु सारे प्राणिजगत में हिंसा से परिपूर्ण जीव ही जीव का आहार बना हुआ है। सबल निर्बल को ग्रास बना रहा है, पीड़ित कर रहा है। दुखी कर रहा हैं। ये सब हिंसक भावनाएँ उसके गुण कर्म स्वभाव की हिंसा बन चुकी है। मानव इन सब भावनाओं से दु:खी है। सुख की प्राप्ति के लिए वह परमपिता परमात्मा से प्रार्थी है कि "हे सविता देव! आप हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन दु:खों को दूर कर दीजिए, और जो कल्याणकारक, गुण, कर्म स्वभाव और पदार्थ है वह सब हमको प्राप्त कीजिए।

"ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव भद्रम् तन्न आसुव।" (यजु. 30/3)

द्वेषों के छुटकारे के लिए प्रार्थना है "प्रभो आप सम्पूर्ण द्वेष युक्त कर्मों को हम से पृथक कर दीजिए"

"विश्वा द्वेवोषि प्रमुमुग्धयस्मत्" (ऋग्)

दुष्कर्मों से छुटकारा पाने के लिए परमात्मा से विनय करता है, वरिष्ठ विद्वानों से प्रार्थना करता है "हे विद्वान पुरूषो! अत्याचार करने वाले, दान न देने वाले तथा दु:ख देने वाले द्वेष भावों को हम से दूर करके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करो।" "अपामीवामप विश्वामनाहुतिम् यच्छेत स्वस्तये।" (ऋग् 10/63/12)

वेद तो अहिंसा के परिपालन का आदेश देता है। प्राणिमात्र को मित्र की दृष्टि से देखने का उपदेश देता है।

"मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे" (यजु 36/18)

(यजु 40/6) में तो स्पष्ट है कि जो मनुष्य भूतों अर्थात जड़ चेतन सृष्टि को आत्मवत् अनुभव करता है, तथा सब के अन्दर आत्मतत्त्व को समाहित अनुभव करता है। वह आत्मदर्शन के कारण किसी से घृणा नहीं करता।

"आत्मवत् सर्वभूतेषु य: पश्यति स पश्यति"

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो ने विजुगुप्सते।। यजु 40/6

जब मनुष्य सारे प्राणियों को आत्मवत् देखने लगता है तो फिर अपने पराए का कोई भेद नहीं रहता। "पुमान् पुमांसं परिपात विश्वत:" ऋग् 6/65/34 वह दूसरे के दु:ख से ही व्यथित हो जाता है। बाल्मीकि रामायण इसी कथन का प्रमाण है। इस महाकाव्य आदि ग्रन्थ का प्रारम्भ ही इसी भाव से है। जब वह महाकवि क्रीड़ामंग्न कौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक (नर पक्षी) को शिकारी के द्वारा मार दिए जाने पर पक्षी के विलाप से द्रवित हो उठता है तो उस के मुख से अनायास ही शब्द निकलते हैं।

मा निषाद् त्वं प्रतिष्ठामगम: शाश्वती समा:।

मिथुनादेकं अवधी: काम मोहितम्।। बा. रा.

यह महर्षि बाल्मीकि में अहिंसा को आत्मसात् करने की पराकाष्ठा है। परिणामस्वरूप एक उत्कृष्टतम् काव्य रचना "रामायण" मनुस्मृति भी कहती है "जो अपने सुख की इच्छा से निरपराध जीवों को मारता है वह जीता हुआ भी मुर्दा है। क्योंकि जो दूसरे प्राणियों के दु:ख का अनुभव नहीं कर सकता, वह कभी भी सुखी नहीं हो सकता।"

वेदों में तो अध्वर: अथर्वा, अनेहस, अघ्नया आदि पद अहिंसा पालन के स्पष्ट संकेत देते हैं।

इसके विपरीत पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों ने यह मत प्रकट कर ऐसा भ्रम फैलाया कि भारत में आर्य लोग गोमांस भक्षण करते थे (Vedic Index, vol 12, page 147) Hacdonell and keith. इसका कारण था वेदों को प्रकरणत: समझने की योग्यता का अभाव, वेदों को स्वयं न पढ़कर अन्यों के भाष्यों पर विश्वास, पाश्चात्यों द्वारा वेद की निन्दा कर भारतीयों को वैदिक धर्म के प्रति ग्लानि उत्पन्न करने की व्यापक योजना।

हिंसा मुख्यत: तीन प्रकार की है। जिस प्रकार हर कार्य के लिए तीन पद है-मनसा, वाचा, कर्मणा।

मानसिक हिंसा-मन के संकल्प द्वारा हिंसा। जैसे किसी को मन से कष्ट पहुँचाना, मन से क्लेश देने सम्बन्धी, दूसरों के मानसिक संतुलन को बिगाड़ना।

वाचिक हिंसा-वचन द्वारा हिंसा करना, कटु वचन बोल कर दूसरों को कष्ट देना।

सत्य एवं मधुर वचन द्वारा ही कटुता पर विजय पाई जा सकती है। मनु के शब्दों में "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्

प्रियं च नानृतं ब्रूयाद् एवं धर्म: सनातन।।" मनु 4/138

महाभारत कटु वचन का ही प्रमाण है।

शारीरिक हिंसा-किसी के प्राण हरण करना, शारीरिक हिंसा द्वारा पीड़ा पहुंचाना, कष्ट देना आदि।

वेदों में तो हिंसा नहीं अपितु सभी प्राणिमात्र के कल्याण समृद्धि एवं शान्ति की प्रार्थनाएँ है।

'शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे" (यजु 36/8)

सभी दो पाँवो वाले मनुष्यों पशु, पक्षी, चौपाए गौ आदि का कल्याण हो। वेद में तो गाय का नाम ही अघ्न्या' है।

"रूपायाघ्नये ते नम:" (अथर्व 10/10/1) हे अघ्नय (अवध्य) गौ तेरे सुन्दर स्वरूप को प्रणाम हो।

"गां मा हिंसी" (यजु 13/47) गाय की हिंसा मत करो।

"सहृदयं सामनस्यमविद्वेष कुणोमि व:।

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्नया।।

हे गृहस्थों! तुम सब समान हृदय रखो। एक दूसरे को ऐसे चाहो जैसे गाय नवजात बछड़े को प्यार करती है।

इसी प्रकार शान्तिकरणम् के मन्त्रों (ऋग् 7/35/1-13) में अग्नि, जल, वायु, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पर्वत, मेघ, समुद्र, रात-दिन, औषधि, वनस्पति, मन, बुद्धि, प्राण आदि में सुख एवं शान्ति की कामना की गई है।

अहिंसा के प्रति पालन के लिए हिंसा की भी यथार्थता है। दण्ड, विधान हिंसा नहीं है। वेदों में जहाँ प्राणी मात्र को मित्र की दृष्टि से देखने के बार-बार निर्देश है वही वेद विद्वान-द्वेषी, मांस भत्ती, क्रूर-प्रकृति वाले, पाप की प्रशंसा करने वालों को बोध देने, बन्धन में डाल देने तथा अंग-भंग करने के भी आदेश है। (अथर्व 8/4/1-25)

जो वीर पुरुष क्रूर हिंसकों को मारता है। उसके लिए प्रतापी (शुक्रशोचि) अमर, पवित्र, शुद्ध करने वाला, स्तुति करने योग्य, अग्नि के समान तेजस्वी विपु सखा, आदि विशेषणों का प्रयोग किया है।

(अथर्व 8/3 20, 22, 26)

इसी प्रकार यदि कोई गौ, अश्व या प्रिय पुरूष को मारता है तो उसे गोली से बेधने का आदेश है। (अथर्व 4/14/4)

पापियों को दण्ड देना हिंसा नहीं, वेद में दिया गया दण्ड विधान अहिंसा की रक्षा के लिए है (अथर्व 8/3/12, 13, 19) (अथर्व 8/4/1-25)

प्रशासक के कठोर दण्ड देने का औचित्य बताते हुए मनु महाराज कहते हैं।

"दण्ड शास्ति प्रजा, सर्वादण्ड स्वाभिरक्षति।

दण्ड: सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्म विदुर्बुधा:।। मनु 7/10

दण्ड ही सारी प्रजा पर शासन करता, दण्ड ही रक्षा करता है, दण्ड ही सोए हुए लोगों में जागता है। अत: बुद्धिमान लोग दण्ड को सधर्म मानते है।

श्री रामचन्द्र जी एवं योगिराज कृष्ण भी अहिंसा के भक्त थे परन्तु दुष्टो के संहार में वे पीछे नहीं हटे। विश्वामित्र ने श्री राम को दुष्ट-न्दलन हेतु कई प्रकार के शाम दे

(शेष पृष्ठ 7 पर)

दिव्य दयानन्द का दिव्य चिन्तन

ले.-आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री

(गतांक से आगे)

महर्षि दयानन्द की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा का ख्याल नहीं किया, अपितु वेदों की प्रतिष्ठा में जीवन न्यौछावर कर दिया। ऋषि कहते हैं कि संसार को लाभ पहुंचाना ही चक्रवर्ती राज्य के तुल्य है। परमात्मा की कृपा से मेरा शरीर बना रहा और कुशलता से वह दिन देखने को मिला कि वेदभाष्य सम्पूर्ण हो जावे तो निःसन्देह इस आर्यावर्त देश में सूर्य का प्रकाश हो जावेगा कि जिसके मेटने और झाँपने को किसी का सामर्थ्य न होगा।

महर्षि दयानन्द ने बाल शिक्षा पर बल दिया, बाल विवाह का विरोध किया। नारी शक्ति का महत्व बताते हुए नारी शिक्षा को अत्यावश्यक बताया। समाज का निर्माण करती है नारी, श्रद्धा और सम्मान की अधिकारिणी है, ताडन या उत्पीड़न की नहीं। विधवा विवाह को वेदानुकूल बताया। घृणित, सतीप्रथा का विरोध किया। राष्ट्र में स्वतन्त्रता का अलख जगाया। स्वराज्य के प्रबल समर्थक महर्षि दयानन्द क्रान्तिकारी थे तथा भारतीय स्वाधीनता संग्राम में भी उनका बहुत बड़ा योगदान है। गांधी और तिलक से पहले दयानन्द जी ने सुराज और स्वराज्य का नारा दिया है। ऋषि ने ही अपने शिष्य श्याम जी कृष्ण वर्मा में देश की स्वतन्त्रता के लिए अनुपम अग्नि प्रचण्ड की थी। देव दयानन्द के ग्रन्थों में स्वतन्त्रता की इच्छा और प्रेरणा कूट-कूट कर भरी हुई है। हम यहाँ केवल दो उद्धरण प्रस्तुत करते हैं-

''अब अभाग्योदय से और आर्यो के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्यावर्त से भी आर्यो का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो है सो भी विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत मतान्तर के आग्रह-रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर माता पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है।''-सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समुल्लास

हे प्रभो! आप 'वरुण' सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो, सो हमको वरराज्य, वर विद्या (और) वरनीति देओ। आर्याभिविनय

स्वामी जी निडर, सत्य के पोषक थे। भय शब्द से उनका परिचय नहीं था। उनकी सत्यवादिता और निर्भीकता ने समाज में प्राण फूँक दिया।

बर्फ का पत्थर इरादे तोड़कर गलता रहा,

धूप और रोशनी देकर सूरज ढलता रहा,

गजब का अन्दाज था ऋषि दयानन्द तेरा

आँधियां चलती रही और दिया जलता रहा।

संसार में जितने भी मत हैं, उनमें एक पक्षीय भावना है। उनके पंथ के प्रचार के निमित्त किसी न किसी व्यक्ति का नाम लिया जाता है, जो उनका प्रवर्तक माना जाता है। सर्वविदित है कि मानव का ज्ञान स्वल्प है, उसके चिन्तन की सीमा है। उसे वह दृष्टि नहीं मिलती जो ईश्वर को और उसकी सृष्टि को समग्रता में देख सके। वेद का जहाँ तक प्रश्न है किसी व्यक्ति विशेष से वह जुड़ा हुआ नहीं है। आस्तिक आर्यो का यह विश्वास है कि वेद परमात्मा का ज्ञान है। अन्य मतावलम्बियों ने पन्थ के सूत्रधारों को आगे रखकर ऐसा लगता है कि उनके गुणों का व्यक्तिरूप में गान किया है और यत्र तत्र उनमें कल्याणकारी भाव दृष्टिगोचर होता है तो वह भी गौणरूप में है। परन्तु वेद में जो संदेश है वो किसी काल और प्रदेश की इयत्ता के अधीन नहीं है, वो सार्वभौम और सार्वकालिक है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज का प्रथम नियम बनाकर जहाँ तक ज्ञान का आदि स्रोत होने का प्रश्न है, ईश्वर के वर्चस्व को अकाट्यरूप से प्रतिष्ठित किया है।

उन्होंने लिखा है-सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

ये नियम इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि ऋषि को गुरुडम से कितनी घृणा थी और हमारी सहमति से ये नियम गुरुडम के नींव पर प्रबलतम आघात है। महर्षि दयानन्द का आर्यो को संदेश-

आर्यो! मेरी बात पर ध्यान देना।
समाधि मेरी कहीं तुम न बनाना।।

न चद्दर न फूल माला तुम चढ़ाना।
न पुष्कर गया में अस्थियां लेके जाना।।

न गंगा में तुम मेरी अस्थियां बहाना।
न यह व्यर्थ के झगड़े तुम पाल लेना।।

मेरी अस्थियां किसी खेत में डाल देना कि जिससे मेरी अस्थियां खाद बनकर।।

काम आयें कभी कृषक दीन जन के। आर्यो मेरे नाम से कोई पाखण्ड न चलाना।।

यज्ञों में दी जाने वाली पशुबलि का प्रबल विरोध करते हुए ऋषि ने पूर्ववर्ती भाष्यकारों के ऐसे शब्दों का शास्त्रानुमोदित, तर्क संगत अर्थ दिया- जैसे 'अश्वा वै अन्नः', अर्थात् अश्वमेध यज्ञ में अश्व की बलि का विधान नहीं है। संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् होते हुए भी ऋषि दयानन्द हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने न केवल अपना जीवन चरित्र हिन्दी में लिखा वरन् वेदों के भाष्य भी हिन्दी में किये। श्री केशवचन्द सेन की प्रेरणा से उन्होंने अपने प्रवचन भी हिन्दी में दिये ताकि जनसामान्य उनसे लाभान्वित हो सके।

कोई महापुरुष किसी नदी के प्रवाह में

डूबते हुए का हाथ थाम के बच गया।

कोई महापुरुष जो निराश बैठे हुए थे,

उन्हें पार दूसरे किनारों पे लगा गया।

कोई महापुरुष बड़े प्यार से हुलार से

दिलों को तसल्ली दे के हौसला बढ़ा गया।

कोई महापुरुष आ के डूबते मुसाफिरों के

सरों से पहाड़ सी मुसीबतें हटा गया।

डूबने की बात पथिक पास ही न आ सके,

देव दयानन्द हमें तैरना सिखा गया।

गुजरात के महाकवि श्री रमणलाल वसंत भाई देसाई ने एक बार कहा था-जिस क्षण देह में दुर्बलता प्रतीत हो, उसी क्षण एक महान विशालकाय संन्यासी का स्मरण करो। जिस क्षण तुम्हारे मन में शिथिलता या कायरता का प्रवेश हो, उसी क्षण जीवन और उत्साह से ओतप्रोत उस तेजस्वी देशभक्त का स्मरण करो। जिस क्षण तुम्हारे हृदय में मोह और विलास का साम्राज्य प्रवृत्त हो, उसी क्षण धन को ठोकर मारने वाले नैष्ठिक ब्रह्मचारी की ओर दृष्टि करो। अपमान से आहत होकर जिस क्षण तुम नजर ऊँची न उठा सको, उसी क्षण हिमालय के पास समान अडिग और उन्नत व्यक्ति के ओजस्वी मुख को अपनी कल्पना में उपस्थित करो। मृत्यु का वरण करते हुए डर लगे, तो उस निर्भयता की मूर्ति का ध्यान करो। द्वेषभाव से खिन्न होकर, जब तुम्हें अपने विरोधी को क्षमा करने में हिचकिचाहट हो, तो उसी क्षण विष पिलाने वाले को आशीर्वाद देते हुए एक रागद्वेषमुक्त गुजराती संन्यासी को याद करो।

वह व्यक्ति महान् आत्मा स्वामी दयानन्द है। यह गौरवशाली पुरुष भारतीय महापुरुषों में अग्रस्थान पर विराजमान है।

महर्षि दयानन्द प्रभावशाली प्रवचनकर्ता ही नहीं, उच्चकोटि के लेखक भी थे। उनके दिव्य चिन्तन की जानकारी सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, संस्कार विधि, स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश, गोकरुणानिधि और वेद भाष्यों से मिलती है। दयानन्द सूर्य के समान तेजस्वी थे किन्तु सूर्य सायंकाल के समय ढल जाता है, इस दृष्टि से वे सूर्य से विशिष्ट थे। वे चन्द्रमा से शीतल थे किन्तु उनमें कोई कलंक नहीं था। दिव्य दयानन्द का व्यक्तित्व एवं कृतित्व अनूठा एवं निराला था।

सत्य के दूत योगसिद्ध महापुरुष दयानन्द

ले.-आचार्य विष्णुमित्र वेदार्थी

नवयुगप्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती के महान् व्यक्तित्व में उनके ऋषित्व का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि इसी ऋषित्व के द्वारा ही उन्होंने श्रवस्य व दुस्तर कार्यों को किया है। उनके कुछ गुण तो अनृषि मनुष्यों में भी उपलब्ध हो सकते हैं किन्तु ऋषित्व व उससे सम्बन्धित विशेषतायें जितेन्द्रिय पूर्ण योगियों के बिना अन्य मनुष्यों को प्राप्य नहीं हैं। इसलिये यही पद मनुष्य के लिये सर्वोत्तम है। यह ऋषित्व क्या है ? प्रथम इसी प्रश्न का विचार किया जाता है। निरुक्तकार यास्काचार्य जी ने ऋषित्व के प्रश्न के उत्तर में लिखा है-''ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान्ददर्शेत्यौ-पमन्यव:। अर्थात् जिसे दर्शन होता है, जिसने मंत्रों को देखा है वा मन्त्रार्थ का दर्शन किया है, वह ऋषि है। यहाँ पर दर्शन का अर्थ बाह्य चर्मचक्षु आदि इन्द्रियों से होने वाला दर्शन नहीं है अपितु इससे भिन्न ही प्रज्ञा में प्रकट हुआ आन्तरिक ज्ञान है। इस बात को पुष्ट करने के लिये यास्क मुनि ने तैत्तिरीय आरण्यक का वचन भी वहाँ उद्धृत किया है -''तद्यदेनांस्तपस्यमानान्ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् त ऋषयोऽभवन् तदृषीणमृषित्वम्।'' अर्थात् (तद्य-देनांस्तपस्यमानान्) तो जो इन तप करते हुओं को (ब्रह्म) ईश्वरीय ज्ञान प्रकट हुआ है, वह ज्ञान किस प्रकार प्रकट हुआ है, इस पर कहते हैं-(स्वयंभु) वह अपने आप होने वाला ज्ञान है अर्थात् इसे नेत्रादि इन्द्रियों से नहीं देखा गया, इस ज्ञान के लिये कोई अनुमान लगाने की चेष्टा भी नहीं की गयी। शब्द प्रमाण से भी यह ज्ञान किसी भद्रपुरुष के बताने पर नहीं हुआ है। इस स्वयमागत विज्ञान के लिये योगी केवल यही कह सकता है-(अभ्यानर्षत्) आ गया अर्थात् हृदय गुफा से निकला देख लिया, दर्शन हो गया। इस प्रकार का आन्तरिक दर्शन करने वाले (त ऋषयोऽभवन्) वे मनुष्य ऋषि हुए (तदृषीणा-मृषित्वम्) यही ऋषियों का ऋषिपन है।

योगीराज स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के मतानुसार भगवान् के ज्ञान से चमकते हुए अन्त:करण का धनी कभी-कभी ऐसी सूचनायें भी दे दिया करता है कि जिनका प्रकट करना हमारे अधिकार से बाहर की बात है। वे सूचनायें कभी तो भूतकाल में घटित उन घटनाओं के सम्बन्ध में होती हैं कि जिन्हें सूचना देने वाले ने न देखा है और न सुना है। कभी-कभी ऐसी सूचनाओं का सम्बन्ध वर्तमान काल की उन घटनाओं से होता है कि जो सूचना देने वाले के स्थान से किसी ऐसे प्रदेश में घट रही होती है कि जो इसकी पहुंच से बाहर है और कभी-कभी ऐसी सूचनाओं का सम्बन्ध उन घटनाओं से भी होता है कि जो अभी घटित नहीं हैं अपितु भविष्यत् में घटने वाली हैं। इस प्रकार के विशुद्ध अन्त:करण का वर्णन भगवान् ने यजुर्वेद में इस प्रकार किया है-

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परि-गृहीतममृतेन सर्वम्।

अर्थात् (येन अमृतेन) जिस नाशरहित परमात्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्) भूतकाल (भुवनम्) वर्तमान काल व (भविष्यत्) भविष्यकाल सम्बन्धी (इदं सर्वम्) सब त्रिकालस्थ व्यवहारों को (परिगृहीतम्) सब ओर से गृहीत किया जाता अर्थात् जाना जाता है।

भगवान् की इस बात को भर्तृहरि जी इस प्रकार कहते हैं-

आविर्भूत प्रकाशानामनुप्लुत चेतसाम्।

अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते।।

वाक्यपदीय (1.37)

अर्थात् जिनके निष्कल्मष चित्त में आन्तरिक प्रकाश प्रकट हो गया है उन्हें भूत व भविष्य की बातों का भी प्रत्यक्षवत् ज्ञान हो जाता है। इतना ही नहीं अपितु प्रत्युत वे ऋषि-

अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्च-न्त्यार्षेण चक्षुषा।

वाक्यपदीय (1.38)

अपनी आर्षदृष्टि से अतीन्द्रिय व असंवेद्य अर्थों को भी देख लेते हैं। वे ऋषि लोग जब-जब जिस-जिस बात को जानने की इच्छा करके समाधिस्थ होते हैं तब-तब परमात्मा उनको अभीष्ट ज्ञान का बोध यथावत् कराता है।

निरुक्तशास्त्र में यास्काचार्य जी कहते हैं-

''साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवु:।''

जिन्होंने धर्म अर्थात् ज्ञान के तत्त्व का समाधि में साक्षात्कार किया है, ऐसे ऋषि हुए हैं।

इस ऋषित्व के दर्शन योगसिद्ध महापुरुष दयानन्द के जीवन में पग-पग पर होते हैं। जैसे कि एक बार की घटना है कि मुजफ्फरगढ़ निवासी महाशय गणपतराय जब लाहौर में कानून पढ़ते थे तब ऋषिवर से संस्कृत पढ़ने आते थे। एक दिवस महाराज ने गणपतराय से पूछा कि आप विवाहित हैं या कुमार ? इस पर गणपतराय ने उत्तर दिया कि अभी तक मेरा विवाह तो नहीं हुआ है किन्तु सगाई हो गयी है। यह सुनकर, तब त्रिकालदर्शी स्वामी जी ने कहा कि ''आप विवाह कदापि न कराइये क्योंकि आपकी आयु का तार तीस वर्ष तक पहुंचने से पहले ही टूट जायेगा।'' ऋषिवर के ऐसा कहने पर अपने गुरु के इस कथन को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार कर गणपतराय ने प्रण किया कि ''मैं विवाह कभी नहीं करूंगा।'' कुछ काल के उपरान्त अपने बन्धु-बान्धवों द्वारा विवाह करने के लिये अतिबाधित करने पर गणपतराय को विवाह करना पड़ा किन्तु उसे स्वामी जी के कथन की सत्यता पर विश्वास था। वह मुलतान जनपद में वकालत का काम करने लगा था। तब अपने जीवन की आयु के 28वें वर्ष में एकाएक रोगग्रस्त होने पर थोड़े ही दिनों में जब इहलोक संवरण करने लगा तब अपनी जीवनलीला समाप्त होने से पूर्व उसने अपने कुटुम्बियों से कहा कि देखो! गुरुदेव का वचन आज सत्य हुआ चाहता है और फिर उसने प्रियजनों की उपस्थिति में सदा के लिये अपने नेत्रोन्मीलन कर लिये।

कभी-कभी महर्षि स्वयं ही अपनी योगसिद्धि दिखा दिया करते थे। एक दिवस राणा सज्जन सिंह व स्वामी सहजानन्द जी से वे बोले कि पण्डित सुन्दरलाल जी आ रहे हैं। पहले सन्देश भेज देते तो वे अपनी बैलगाड़ी लाने का कष्ट न उठाते। इस पर महाराणा ने महर्षि से निवेदन किया कि हे भगवान्! अब भेज देते हैं। तब सिद्ध योगी ने कहा कि अब वे चल पड़े हैं। उनकी गाड़ी में एक बैल शुक्ल है और दूसरा लाल श्वेत धब्बे वाला। अहो! दूसरे दिवस पण्डित सुन्दरलाल इन्हीं लक्षणों के सहित पहुँचे। इस प्रकार महर्षि के जीवन में विभूतियों की अनेक घटनायें हैं जिन्हें विस्तारभय से उपस्थित नहीं किया जा रहा है।

महर्षि ने जब वेदभाष्य करने के लिये उसकी ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका को लिखा था तब उससे पूर्व ही उन्हें ऋषित्व प्राप्त हो चुका था। महर्षि अपने ऋषित्व को न कभी प्रकट करते थे औ न ही उन्हें इसकी आवश्यकता थी, किन्तु जब अपने वेदभाष्य का ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में वैशिष्ट्य प्रतिपादन कर रहे हैं तब अपने भाष्य को अनृषिकृत भाष्यों से पृथक् रखते हुए विवशत: स्वयं का ऋषि होना स्वीकार कर गये हैं। वहाँ पर ऋषिवर लिखते हैं-''कर्मकाण्डानुष्ठानस्यैतरेयशत-पथब्राह्मणपूर्वमीमांसा यर्थार्थं विनि-योजितत्वात् पुनस्तत्कथेनेना-नृषिकृतग्रन्थवत् पुनरुक्तपिष्ट-पेषण दोषापत्तेश्चेति।'' इन वाक्य में ऋषिराज दयानन्द सरस्वती अपने वेदभाष्य का प्रतिज्ञान कराते हुए अपने भाष्य को अनृषिकृत ग्रन्थों से पृथक् रखकर स्पष्ट ही स्वयं का ऋषि होना स्वीकार कर रहे हैं।

आन्तरिक प्रसाद से सम्पन्न ऋषियों की बुद्धि ऋतम्भरा प्रज्ञा कहलाती है। वह प्रज्ञा सत्य को ही धारण करती है, उसमें मिथ्यापन की गन्ध भी नहीं होती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्य के दूत थे। इसलिए वे सदा सत्य अर्थ का ही प्रकाश किया करते थे। जैसे कि उनके समय में प्राणियों की उत्पत्ति विषयक अनेक मत उपस्थित थे। सृष्टि के आरम्भ में प्राणियों की उत्पत्ति का वास्तविक सिद्धान्त उन मतों में कहीं खो गया था। तब अपनी आर्षदृष्टि से ऋषिवर ने कहा कि-''आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर परमात्मा बनाकर उसमें जीवों का संयोग कर देता है, तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है।'' एवमेव महर्षि के समय में सभी मतवादी व वैज्ञानिक लोग सृष्टि की आयु उसकी वास्तविक आयु से अत्यन्त न्यून ही मानते थे। तब महर्षि ने सृष्टि के आरम्भ से लेकर निरन्तर चली आ रही आर्य लोगों की नित्यप्रति की दिनचर्या के लेख व संकल्प पठनविद्या के आधार पर अपने समय में सृष्टि की वर्तमान आयु एक वृन्द छियानवे करोड़ आठ लाख बावन हजार नौ सौ छियत्तर वर्ष बतलाकर सबको चकित कर दिया था। इसी प्रकार महर्षि के समय में जब विमान का आविष्कार नहीं हुआ था तब ऋग्वेद 2।2।3 के भावार्थ में पूज्य महर्षि जी लिखते हैं-''जो लोग आकाश,

(शेष पृष्ठ 7 पर)

अहिंसा दिवस पर विचार गोष्ठी

आर्य समाज फाजिलका एवं वैदिक शिक्षा परिषद् फाजिलका के तत्त्वावधान में 02 अक्तूबर को ''अहिंसा दिवस'' के रूप में मनाने हेतु विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसका विषय था-''अहिंसा की यर्थाथता-किसके लिए कितनी व्यवहार्य?'' विचार गोष्ठी के संयोजक वेदप्रकाश शास्त्री ने आयोजन का उद्देश्य बताते हुए कहा-''क्योंकि सामान्य और विशेष व्यक्ति के लिए उसकी स्थिति के अनुसार आचरणीय मापदण्ड एवं सीमाएं अलग-अलग हैं। राजनेता, शासक, प्रशासक, पदाधिकारी, कर्मचारी और जनता सभी के लिए अहिंसा अनिवार्य होते हुए भी व्यावहारिक रूप में मात्रात्मक भेद है। अत: इस बात को दृष्टि में रखते हुए विभिन्न धर्मों के प्रवक्ताओं को आमन्त्रित किया गया। जिससे उनके धर्म के अहिंसात्मक दृष्टिकोण को जाना जा सके।

सायं 4 बजे आयोजित इस विचारगोष्ठी में 1. वैदिक धर्म 2. सनातन धर्म 3. जैन धर्म 4. सिक्ख धर्म के प्रवक्तागण क्रमश: डॉ. सुशील वर्मा, श्री राम स्वरूप शास्त्री, श्री अनिल जैन एडवोकेट तथा सरदार गुरमीत सिंह सम्मिलित हुए। चिकित्सा-क्षेत्र से डॉ. रेणु घूड़िया ने अपने विचार प्रस्तुत किए। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए डॉ. रणवीर प्रताप असीजा ने निष्कर्ष रूप में यही कहा कि व्यक्ति के अनुसार अहिंसा की स्थिति भिन्न होते हुए भी मन, वचन, कर्म से किसी को पीड़ा न देना ही अहिंसा है। सैनिकों द्वारा शत्रुओं को मुंहतोड़ उत्तर देते हुए उनका काम तमाम कर दिया जाना भी अहिंसा ही है। इस अवसर पर डॉ. नवदीप जसूजा, डॉ. सिम्मी जसूजा, सतीश आर्य, डॉ. अमरलाल बाधला अभय चावला, किशोर चन्द पुंछी, श्रीमती सुदेश नागपाल, मीना शर्मा, हीरालाल छाबड़ा, स. कुलवन्त सिंह, सत्यस्वरूप पुंछी एवं अन्य अनेक गणमान्य महानुभाव उपस्थित थे।

-वेदप्रकाश शास्त्री

पृष्ठ 4 का शेष-वेदों में अहिंसा की यथार्थता

सकते थे सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। क्योंकि वे स्वयं तो हिंसा-रहित (अध्वरे) यज्ञ कर रहे थे। अध्वर अर्थात् जिस कार्य से हिंसा न हो ''ध्वनि हिंसाकर्मा तत्प्रतिपाद्य अध्वर:

(निरुल 1/8)

महर्षि पंतजलि ने अपने योग दर्शन में अष्टांगों में सबसे प्रथम 'यम' को स्थान दिया है और उन पाँच यमों में अहिंसा प्रथम स्थान पर है।

''तत्राहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रहा यमा:।।'' योग दर्शनम् 2/30 अहिंसा का मार्ग अपनाने से परित्याग कर दिया जाता है।

''अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्याग:'' (योग दर्शन 2/35) महर्षि दयानन्द इसका अर्थ करते हैं जब अहिंसा धर्म निश्चय (व्यवहार में बढ़ा हो जाता है तब उस पुन: कैसे छूट जाता है। किन्तु उसके सामने वा उसके संग से अन्य पुरुष का भी वैर-भाव छूट जाता है।''

(ऋ. भा. भू. (उपासना विषय)

वेदों में जहाँ अहिंसा का उपदेश है। वहां अहिंसा की रक्षार्थ हिंसा के निर्देश भी है। परशुराम इस पंक्ति का परिपालन करते हुए गर्जना करते है।

अग्रतश्चतुरो वेदा: पृष्ठत: संहारो धनु:।

इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शास्त्रादपि शरादपि।।

अर्थात् सम्मुख चारों वेद, पीछे शस्त्र। यह ब्रह्मत्व के रूप में शास्त्र है और क्षत्रियत्व के रूप में शस्त्र। यही है अहिंसा की यथार्थता।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

पृष्ठ 6 का शेष-सत्य के दूत योगसिद्ध...

समुद्र तथा पहाड़ी भूमि में भी रथों को चलाते हैं वे सुख के मार्ग से पार होते हैं।'' इसी प्रकार ऋग्वेद 2 ।2 ।9 के भावार्थ में लिखते हैं-''जो नौकाओं से समुद्र में, रथों में पृथिवी पर और विमानों से आकाश में युद्ध करते हैं, वे सदा ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं।

सृष्टि के आरम्भ काल से लेकर महाभारत के समय तक वेद मत से भिन्न दूसरा कोई मत पृथिवी पर नहीं था क्योंकि वेदोक्त सब बातें ज्ञान से परिपूर्ण हैं। पश्चात् महाभारत युद्ध के कारण अविद्या अन्धकार के फैलने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन जैसा आया उसने वैसा मत चलाया। इन मत वालों ने यह मिथ्या धारणा भी प्रचारित कर दी कि आर्य भारत के मूल निवासी नहीं है अपितु बाहर से आये हैं। तब महर्षि ने गम्भीरतापूर्वक कहा कि हे मनुष्यो! आर्य नाम किसी समुदाय विशेष का वाचक न होकर जिनके भी गुण, कर्म, स्वभाव वेदानुकूल हैं, उन सभी श्रेष्ठ मनुष्यों का है। परमेश्वर ने ही स्वयं यह नामकरण अपनी प्रजा का प्रत्येक सृष्टि के लिये वेद में किया हुआ है जिससे कि सब मनुष्य अपने नाम के अनुरुप श्रेष्ठ बनने के लिये दृढोत्साही रहें। इस कारण समस्त पृथिवी आर्यों की है। आर्यावर्त्त आर्यों का नहीं है, इस मिथ्या धारणा का जब किसी ने विरोध नहीं किया था तब महर्षि ही थे कि जिन्होंने सर्वप्रथम इसका विरोध किया। इस पर श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने कहा था-"Dayanand was the first to prclaim to India for Indians." अर्थात् दयानन्द ने ही सर्वप्रथम घोषणा की कि भारत भारतीयों का है।

वेद प्रभु की कल्याणी वाणी है इस सत्य को पहले जन एक स्वर से मानते चले आ रहे थे किन्तु वेदों की अप्रवृत्ति होने से वेद ईश्वर के रचित हैं, इस बात को भी लोग भूल चुके थे। ऐसी अवस्था में पूज्य महर्षि जी ने घोषणा की कि वेद ईश्वरीय वाणी है। परमात्म ने अग्नि, वायु, आदित्य व अङ्गिरा ऋषियों के आत्माओं में अन्तर्यामी रूप से एक-एक वेद का प्रकाश करके, उनके द्वारा अपने ही ज्ञान से वेदों को प्रकट किया है। परमात्मा ने अपने ज्ञान वेदों को प्रकट करने के लिये अग्नि आदि ऋषियों को किस भाँति से निमित्त बनाया है, इस बात को समाधिस्थ दयानन्द योगसमाधि के अन्दर प्रत्यक्ष करके अपने आसन से उठे और खिलखिलाकर हँसे तथा संसार के समक्ष बोल उठे-''अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा, इन चार मनुष्यों को जैसे वादित्र को कोई बजावे वा काठ की पुतली को चेष्टा करावे, इसी प्रकार उनको निमित्त मात्र किया था, क्योंकि उनके ज्ञान से वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई।'' इस प्रकार वेद ईश्वरीय वाणी है, इसका बोध कराकर महर्षि ने वेद रूपी वाणी को स्वत: प्रमाण अर्थात् अपने आप ही प्रमाण व वेद तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से प्रमाणयुक्त ऋषि मुनियों के बनाये हुए शास्त्रों को परत: प्रमाण की कोटि में रखा।

महर्षि ने सब मनुष्यों के लिये धर्म एक ही है, यह कहकर मिथ्या, भ्रम से भरे हुए मनुष्यकृत बाईबिल, कुरान आदि के मतवाद का खण्डन करके सब सत्य विद्याओं के भण्डार वेद को ही धर्म सिद्ध किया तथा प्रभु प्रेम में निमग्न होकर धर्म के मूल वेद की ओर अग्रसर करने वाली वेद की वाणी संस्कृत के विस्तार का आदेश दिया। क्षुद्रबुद्धि लोगों ने वेद के पठन-पाठन का जो अधिकार मनुष्यों से छीनकर कुछ ही व्यक्तियों के लिये सीमित कर दिया था। उस अधिकार को सब को दिलाकर न्यायकारी समर्थ दयानन्द ने वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म घोषित किया। एवमेव जहाँ विशेष गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर मिलने वाली ब्राह्मण वर्ण आदि सम्पत्तियाँ अपने पिता पितामह की सम्पत्तियाँ मान ली गयीं थीं, तब इस निरर्थक आरक्षण को समाप्त करके इसके स्थान पर विशुद्ध वैदिक वर्ण व्यवस्था को स्थापित किया। इस शुद्ध व्यवस्था के स्थापित होने पर उन्नति के लिये सबको समान रूप से अवसर प्राप्त होने लगे तथा अपने विशेष गुण, कर्म, स्वभाव से गिरने पर अपने वर्ण के छिनने का भय उत्पन्न होकर वाञ्छित वर्ण के लिये यत्न करने की भावना भी निर्मित होने लगी। मनुष्य जीवन के धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष रूप फलों को सिद्ध करने के लिए ऋषिवर ने जीवन में यथासमय चार आश्रमों को धारण करने की वैदिक व्यवस्था प्रदान की। इन आश्रमों में अपने-अपने आश्रम के अनुसार यथायोग्य पञ्चमहायज्ञों का विधान करके आध्यात्मिक जीवन को समुन्नत करने के लिये सभी स्त्री पुरुषों को सन्ध्या व योगाभ्यास को नियमित रूप से करने का विशेष आदेश दिया।

(शेष पृष्ठ 8 पर)

पृष्ठ 7 का शेष-सत्य के दूत योगसिद्ध...

समाज में तब नारी जाति की अवस्था कतिपय विषयों को लेकर शोचनीय हो चली थी। तब नारी से उसके अध्ययन व धर्मानुष्ठान आदि के अधिकार भी छीन लिये गये थे। जिसके परिणामस्वरूप अशिक्षा, बाल विवाह, अस्वयंवर विवाह, अनमेल विवाह व अवगुण्ठन प्रथा आदि की विकृतियों से दु:पूर्णा नारी अबला बन चुकी थी। उस समय नारी के उत्थान के लिये दयालु दयानन्द ने अनेक प्रयत्न किये। उस मूढ़ता के काल में जब स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम् के निरर्थक घोष गूंज रहे थे तब इन घोषों का वैदिक प्रमाणों से निराकरण करते हुए सभी का पठन-पाठन अनिवार्य किया गया। महर्षि का तर्क था कि परमेश्वर ने पुरुषवत् नारी को भी ज्ञानेन्द्रिय व बुद्धि आदि साधन सामग्री ज्ञान ग्रहण करने के लिये प्रधान की है। इससे नारी को भी धर्म, वैद्यक, शिल्प, गणित, विज्ञान, राजविद्या, युद्धविद्या, व्यवहार विद्या व पाक आदि की विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये। विद्या का कोश ही अक्षय कोश है, इसके बिना कल्याण नहीं है। ऋषिवर की इस मान्यता के अनुसार जब स्थान-स्थान पर कन्या गुरुकुलों को खोला गया तब कन्याओं के पढ़ाने पर धर्माधिकारियों के द्वारा सर्वथा प्रतिबन्ध लगाया हुआ था। अहो! जब-जब भगवान् के बन्धन रहित ज्ञान पर कृत्रिम प्रतिबन्ध लगाने की चेष्टा की जाती है तब-तब इस प्रकार के आवरण को हटाने के लिये प्रभु की कृपा से दयानन्द सदृश किसी महापुरुष का आगमन होता है। आर्य समाज की कृपा से गुरुकुलों से स्नातिका बनकर बड़ी-बड़ी पण्डितायें निकलीं। गुरुकुल के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर आर्य समाज मन्दिरों में कन्या पाठशालायें भी खोली गयीं। यद्यपि इन पाठशालाओं से आर्यसमाजों में धन-सम्पत्तियों के लोलुप व वैदिक सिद्धान्तों से अनभिज्ञ अनार्य प्रविष्ट होकर परस्पर लड़ने लगे। अनार्यों के इस वैमनस्य को तब जनता से आर्यों का वैमनस्य समझ लिया। वस्तुत: आर्य मन्दिरों में आर्यों का नहीं, अपितु अनार्यों का क्लेश होने लगा। इससे आर्य समाज की क्षति हुई। भविष्य में इस क्षति से बचने के लिये ये पाठशालायें आर्य मन्दिरों से पृथक् खोलनी चाहियें।

बाल्यकाल, ब्रह्मचर्य अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने के लिये होता है। इस अवस्था में विवाह अवैज्ञानिक है व बालक-बालिका के पैरों में अपने हाथों कुल्हाड़ी मारने के तुल्य है। इसलिये ऋषिवर ने वेदानुसार युवावस्था में ही विवाह करने का विधान किया। महर्षि जी गुण, कर्म, स्वभावानुसार सदृश वर-कन्या का विवाह होना उचित मानते हैं। इस विषय में वे कहते हैं-"भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहे फिर सुख कहाँ?" ऋषिवर के मतानुसार विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल व शरीर का परिमाण आदि यथायोग्य होने पर विवाह सुखकारी होते हैं। इसका निर्णय स्वयं वर कन्या द्वारा ही होना चाहिये। इसे ही स्वयंवर विवाह कहते हैं। स्वयंवर विवाह की प्रशंसा करते हुए ऋग्वेद भाष्य में ऋषिवर लिखते हैं-"जो वधू और वर स्वयंवर विवाह से परस्पर प्रसन्न होकर विवाह करते हैं, वे सूर्य और उषा के समान गृहाश्रम को उत्तम आचार से अच्छे प्रकार प्रकाशित कर सर्वदा आनन्दित होते हैं। महर्षि यह भी चाहते थे कि नारियों में पर्दे के कारण उत्पन्न अशिक्षा का विनाश हो। विवाह संस्कार में महर्षि द्वारा विनियुक्त वेदमन्त्र "समुङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्चत" यही प्रेरणा दे रहा है कि वधू अवगुण्ठन में अदृश्य न रहे।

महर्षि जी मनुष्य जाति के लिये प्रकाश स्तम्भ हैं और उनके जीवन की ही तरह उनके देहत्याग का अन्तिम दैवी दृष्य भी अन्धकार को मिटाकर प्रकाशित करने वाला है। अब हम इस दृश्य पर थोड़ा सा दृष्टिपात करते हैं। उपदेशक दयानन्द ने जब जोधपुराधीश राजा यशवन्त सिंह को वेश्या व्यसन से मुक्त रहने का उपदेश दिया तो उस उपदेश से नन्हीं जान नामक वाराङ्गना विकट वैर की विषम ज्वाला से अवर्निश सन्तप्त रहने लगी। वह तथा अन्य षड्यन्त्रकारी मिलकर षड्यन्त्र रचना में लग गये। उन्होंने महर्षि को उनके पाचक जगन्नाथ के द्वारा आश्विन कृष्णा चतुर्दशी सम्वत् 1940 के दिन दूध के साथ विषम विष का पान करा दिया। अ: !!! आश्चर्य है कि विश्वासपात्र जगन्नाथ ही स्वार्थी बनकर ब्रह्मघाती बन गया। ऋषिवर ने जब अपने अपराधी को जान लिया तो वह अपने अधम अपराध को स्वीकार करते हुए प्रायश्चित्त करते देखकर कर्मगति और फलभोग के विश्वासी क्षमाशील दयालु दयानन्द अपने घातक की प्राणरक्षा में प्रवृत्त होकर उससे बोले कि हे जगन्नाथ! लो ये कुछ रूपये हैं इन्हें लेकर इस राज्य की सीमा से पृथक् नेपाल जाकर अपने प्राणों की रक्षा करो। अहो! इस अहिंसाव्रती ने मारने वाले को भी जीवनदान देकर संसार के इतिहास में अमनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया।

इसके पश्चात् भयंकर विष के प्रभाव से स्वामी जी महाराज की स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ती चली गयी क्योंकि डॉ. अलीमदर्शन खाँ सदृश चिकित्सक भी ऋषि के शरीर में औषध के नाम पर विष का अन्त: क्षेप कर रहे थे। फिर तो विष के प्रभाव से अन्तर्दाह व शरीर पर छाले बढ़ते ही चले गये। तब इस विकट विपत् में भी स्वामी जी धैर्यपूर्वक भक्तों की खिन्नता दूर कर रहे थे। इस प्रकार धीरे-धीरे अन्तिम दृश का आश्चर्यजनक समय दीपावली का दिवस भी आ पहुँचा। स्वामी जी के तन को यद्यपि विषजन्य व्याधि ने बलहीन कर दिया था तथापि वे प्रसन्नचित थे और अपने शिष्यों के कर्त्तव्य कर्म करने व आनन्दित रहने का उपदेश करते रहे। ऐसी दशा में ही शाम के साढ़े पाँच बज गये। स्वामी जी ईश्वरेच्छा को भलीभाँति समझ चुके थे। इसलिये प्रभु की व्यवस्था को सानन्द स्वीकार करके उस इच्छा में अपनी सहमति को सांझा करते हुए अपने महाप्रयाण के लिये तैयार होकर भवन के द्वारा व वातायन खुलवा दिये और समागत भक्तों को अपनी पीठ के पीछे खड़ा कर दिया और अपनी दिव्यदृष्टि से उस कार्तिकी अमावस्या के दिन भवन की छत व भित्तियों पर दृष्टिपात किया और तत्पश्चात् योगी के मुख से गम्भीर आह्लादकारी ध्वनि में वेद पाठ आरम्भ हो गया। अहो! मानो दयानन्द के आत्मा व परमात्मा की अन्तरंग परिषद् प्रारम्भ हो गयी। ऋषिभक्त गुरुदत्त उस कमरे के एक कोने में भित्ति के समीप खड़े हुए निर्निमेष दृष्टि से दो सखाओं के अनिर्वचनीय मिलन का अवलोकन कर रहे थे। प्रभुमग्न दयानन्द ने वेदगान के अन्तर परमप्रीति से पुलकित होकर संस्कृत शब्दों से परमात्मदेव का गुणगान किया। तत्पश्चात् आर्यभाषा में स्तुति कर आनन्दमग्न होकर गायत्री मन्त्र का पाठ करते-करते शान्त समाधिस्थ हो गये। कुछ काल के पश्चात् समाधि की उच्चतम भूमि से उतरकर परमप्रिय पिता से आह्लादक वार्तालाप में निमग्न होकर अतीव मैत्रीभीव से कहते हैं-हे दयामय सर्वशक्तिमान् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहो! तूने अच्छी लीला की। इतना कहकर करवट ली और एक बार श्वास को रोककर मोक्षधाम को चले गये।

इस दयानन्द निर्वाण रूप सुन्दर दैवी दृश्य से गुरुदत्त की नास्तिकता के समस्त तर्क विलुप्त होकर वे सच्चा, सुन्दर, आस्तिक जीवन पा गये और विश्व को पावन गुणों का प्रेरक अध्याय मिल गया। पूज्य महर्षि जी का जीवनदर्शन बहुआयामी है, उसमें से यह किञ्चिन्मात्र ही अर्थात् विशाल सरोवर में से एक बन्दु के तुल्य भी नहीं लिखा गया है। हमें दयानन्द सरोवर में प्रवेश करने के लिये उनके 'जीवन चरित्र' व उनके द्वारा लिखित 'सत्यार्थ प्रकाश' आदि विशाल साहित्य का अध्ययन करना होगा।

वेदवाणी

नदी के पार

अश्मन्वती रीयते सँरभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखाय:।
अत्रा जहीमो अशिवा ये असन् शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान्।।

-यजु:० ३५।१०; ऋ० १०।५३।८; अथर्व० १२।२।२६

ऋषि-भृगु:।। देवता-अग्नि:।। छन्द:-त्रिष्टुप्।।

विनय-भाइयो ! सांसारिकता की नदी बड़े वेग से बह रही है। अपने अभीष्ट सुखों को, सच्चे भोगों को, बलों को हम इस नदी के पास पहुँचकर ही पा सकते हैं, पर हमें बहा लिये जाने वाले विषयों के इस भारी प्रवाह को तर जाना भी आसान कार्य नहीं है। यह नदी बड़ी विकट है। इसमें पड़े हुए भोग्य-पदार्थों के बड़े-बड़े और फिसलाने वाले चिकने पत्थर हमारे पैरों को जमने नहीं देते। इधर शिलाओं की ठोकर खाकर पग-पग पर गिर पड़ने का डर है, उधर नदी का वेग हमें बहाये लिये जाता है, परन्तु पार पहुँचे बिना हमें सुख-शान्ति भी नहीं मिल सकती, अत: भाइयो! उठो, मिलकर एक-दूसरे को सहारा देते हुए आगे बढ़ो। हिम्मत करके उठ खड़े होओ और दृढ़ता के साथ प्रबल यत्न करते हुए इस नदी के पार उतर जाओ, परन्तु सबसे बड़ी विपत्ति तो यह है कि पहले ही पत्थरों वाली और वेगवती इस नदी के पार उतरना इतना मुश्किल हो रहा है, ऊपर से हमने अपने बहुत-से 'अशिव' संग्रहों का बोझ भी सिर पर लाद रखा है। भोगेच्छा, कुसंस्कार, अधर्म की वासना तथा पापों के भारी बोझ से हमने अपने को बोझिल बना रखा है। इसके कारण हमारा पार उतरना असम्भव हो रहा है। आओ साथियो! भाइयो! पहले हम इन सब 'अशिव' वस्तुओं को यहीं फेंक दें। इन्हें छोड़कर हल्के हो जाएँ जिससे कि हम नदी पार उतरने के लिए आसानी से अपनी पूरी शक्ति लगा सकें। जितने शुभ, कल्याणकारी 'वाज' हैं, सच्चे भोग हैं, बल हैं, ज्ञान हैं, वे तो हमारे लिए बहुतायत में नदी के पार विद्यमान हैं, हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। फिर हम मूर्ख लोग इन 'अशिव' वस्तुओं को किसलिए उठाये हुए हैं ? यह बोझ तो हमें डुबा देने में ही सहायक होगा। यदि इस बोझ के साथ हम स्वयं डूब मरना या नदी-प्रवाह हो जाना नहीं चाहते तो हमें इन सब बुराइयों का तो यहीं नदी-प्रवाह कर देना चाहिए। इन 'अशिव' संग्रहों के बोझ से छुटकारा पाकर हमें एक-दूसरे को सहारा देते हुए आगे बढ़ना चाहिए। विषयों के प्रबल प्रवाह से बचने के लिए हम सबको परस्पर एक-दूसरे के 'संरम्भ' (आश्रय) की आवश्यकता है। हे कल्याण चाहने वालो ! यह नदी चाहे कितनी विकट हो, परन्तु इसे पार किये बिना कोई चारा नहीं है।

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।